शिक्षक शिक्षा एवं गुणात्मक सुधार

ललित कुमार*

शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता से देश एवं समाज की प्रगति का सीधा संबंध है और इसीलिए कोठारी कमीशन ने कहा है कि राष्ट्र के किसी व्यक्ति का स्तर उस राष्ट्र के शिक्षक के स्तर से ऊँचा नहीं उठ सकता। भारत में शिक्षक शिक्षा ने काफ़ी प्रगति की है किन्तु गुणवत्ता की कीमत पर शिक्षक शिक्षा का अनियोजित विकास एवं अनियंत्रित प्रसार आज एक बड़ी चुनौती है। शिक्षक शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए चार तत्व–शिक्षक, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन एवं संसाधन, निर्णायक भूमिका निभाते हैं। इन तत्वों की गुणवत्ता में सुधार से शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ायी जा सकती है और देश एवं समाज के हित में राज्यों एवं केंद्र की सरकारों को इसकी जिम्मेवारी निजी संस्थाओं के सहारे न छोड़कर स्वयं लेनी चाहिए।

शिक्षक शिक्षा–अर्थ एवं प्रकृति

शिक्षक शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा से है जो भावी शिक्षक को एक कुशल, योग्य एवं सफल शिक्षक बनने के लिए प्रदान की जाती है। अध्यापक शिक्षा का संबंध सीधे तौर पर विद्यालयी शिक्षा से है क्योंकि अध्यापक शिक्षा के द्वारा विद्यालय के लिए शिक्षकों को तैयार किया जाता है। यादव, सतीश कुमार [1] (2009) ने भी इस संदर्भ में कहा है –

> *''अध्यापक शिक्षा व विद्यालयी शिक्षा एक दूसरे के पूरक हैं। अध्यापक शिक्षा से ही विद्यालयी शिक्षा में सुधार लाया जा सकता है क्योंकि अध्यापक शिक्षा द्वारा अध्यापकों को तैयार किया जाता है और उनको इस दौरान आवश्यक ज्ञान व कौशल दिया जाता है।''*

शिक्षक शिक्षा के महत्त्व का भान कोठारी कमीशन के इस विचार से प्रकट होता है कि कोई भी व्यक्ति उस देश के शिक्षक के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता है। आधुनिक काल के प्रारंभ में शिक्षक शिक्षा को शिक्षक प्रशिक्षण के रूप में जाना जाता था, किंतु शिक्षा शब्द के व्यापक एवं प्रशिक्षण के संकुचित अर्थ के कारण शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षक प्रशिक्षण को शिक्षक शिक्षा से स्थानान्तरित कर इस तथ्य की तरफ़ ध्यान आकर्षित किया कि शिक्षक शिक्षा का क्षेत्र शिक्षा के तीनों निर्धारित उद्देश्यों–ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक से संबंधित है। अध्यापक शिक्षा की अवधारणा प्रशिक्षण से अधिक व्यापक है। अध्यापक शिक्षा का संबंध सिर्फ़ शिक्षण कला में

*सी–1/5, प्रोफ़ेसर्स कॉलोनी, सैदपुर कॉम्पलेक्स (पटना विश्वविद्यालय), राजेन्द्रनगर स्टेडियम के पीछे, पटना, बिहार–800016

निपुणता से नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य भावी शिक्षकों का व्यक्तिगत, सामाजिक, व्यावसायिक एवं नैतिक विकास कर उन्हें अध्यापक के विभिन्न उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक एवं प्रभावशाली ढंग से संपन्न करने योग्य बनाना है। प्राचीन काल में अध्यापन को जन्मजात एवं प्रकृति प्रदत्त योग्यता समझा जाता था। उस समय यह धारणा थी कि अध्यापक बनने की योग्यता एवं कौशल जन्म से ही व्यक्ति में होता है। अध्यापक बनने के लिए किसी प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता को उस समय लोग नहीं महसूस करते थे, किंतु यह भी सत्य है कि उस समय गुरु या अध्यापक की अनुपस्थिति में कुशल छात्रवर्ग संचालन एवं शिक्षण कार्य का निर्वहन सफलतापूर्वक करते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में विश्व के लगभग सभी देशों में अध्यापक के जन्मजात होने संबंधी मान्यता का खंडन किया जाने लगा तथा धीरे-धीरे विश्व के लगभग सभी देशों में यह स्वीकार किया जाने लगा कि शिक्षण कौशलों, शिक्षण युक्तियों, शिक्षण विधियों तथा शिक्षा के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक पहलुओं की शिक्षा देकर श्रेष्ठ एवं योग्य अध्यापक तैयार किये जा सकते हैं।

इस युग में जहाँ पूरा विश्व ज्ञान-विस्फोट एवं जनसंख्या-विस्फोट जैसी समस्याओं से रूबरू हो रहा है शिक्षक शिक्षा का कार्य और भी कठिन एवं चुनौतीपूर्ण हो गया है। नित्य हो रहे विद्यालय के पाठ्यक्रम में बदलाव, मूल्यांकन की नयी चुनौतियाँ तथा शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों से संबंधित शोध-खोज ने शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र को व्यापक बना दिया है। बाल केंद्रित शिक्षा की आवश्यकता ने अध्यापक शिक्षा की पाठ्यवस्तु के साथ-साथ बालकों की प्रकृति को अच्छी तरह समझने की चुनौती प्रस्तुत की है। आमतौर पर प्रशिक्षित अध्यापक कक्षा शिक्षण को रोचक, जीवंत एवं प्रभावशाली बनाने की कला में निपुण होता है। वह शिक्षण की विधियों, प्रविधियों, युक्तियों के साथ-साथ विभिन्न मनोवैज्ञानिक तथ्यों से परिचित होने की वजह से छात्रों को सहजता, सरलता एवं सुगमता से स्थायी ज्ञान प्रदान करने में सक्षम होता है। इसके विपरीत अप्रशिक्षित शिक्षक शिक्षा विज्ञान के ज्ञान के अभाव में शिक्षण को अमनोवैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर अपने कार्य को काफी दुरूह बना लेता है। बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा[2] (2008) ने भी प्रशिक्षण की महत्ता पर बल देते हुए लिखा है–

> *''अध्यापक को बच्चे के बारे में अधिक जानकारी होनी चाहिए, उसे ज़्यादा संवेदनशील और अवबोधात्मक होना है और इसके साथ-साथ उद्देश्यपूर्ण ढंग से अपनी नयी भूमिका निभाने के लिए सुव्यवस्थित रूप से अधिक प्रशिक्षित भी होना पड़ेगा। उनकी संभावित उत्पीड़क स्थिति के बारे में जो भी आशंका हो (सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री फ्रेरे ने अध्यापक को उत्पीड़क, प्रदेष्टा या चतुर तक कह डाला), अभी तक शिक्षा की ऐसी कोई मुकम्मल वैकल्पिक व्यवस्था उभरकर सामने नहीं आई है जो अध्यापक या अनुदेशन को पूरी तरह हटा सके।''*

एक अच्छे अध्यापक के लिए न केवल कक्षा शिक्षण में प्रवीण होना आवश्यक है, बल्कि उसे एक शिक्षक के रूप में शिक्षक के अन्य

दायित्वों के पालन में पारंगत होने की आवश्यकता है। परीक्षा एवं मूल्यांकन, अनुशासन, विद्यालय प्रशासन, पाठ्यसहगामी क्रियाओं का संचालन, समाज में शिक्षा की महत्ता की स्थापना जैसे कार्य भी अध्यापक को करने होते हैं, और शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान उसे इन विभिन्न प्रकृति के कार्यों के संपादन के लिए तैयार करता है। शिक्षक शिक्षा का क्षेत्र चुनौतीपूर्ण एवं विस्तृत है क्योंकि यह उन सभी औपचारिक तथा अनौपचारिक क्रियाओं तथा अनुभवों का ज्ञान प्रदान करने से संबंधित है जो किसी व्यक्ति को अध्यापक के उत्तरदायित्वों को प्रभावशाली ढंग से निर्वहन करने में समर्थ बनाता है।

शिक्षक शिक्षा की प्रगति

शिक्षण दुनिया की सबसे प्रतिष्ठित एवं पुरानी वृत्तियों में से एक है और इस दृष्टि से शिक्षक शिक्षा का इतिहास भी काफ़ी पुराना है। वैदिक कालीन समाज में शिक्षक का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था, किंतु शिक्षक शिक्षा का पाठ्यक्रम परिभाषित और निर्धारित नहीं था। गुरु के संपर्क में छात्र अध्यापन कला का अनौपचारिक ढंग से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते थे और फिर प्राप्त अनुभवों की मदद से स्वतंत्र अध्यापन कार्य प्रारंभ करते थे। अध्यापन का क्षेत्र संकुचित था क्योंकि आम आदमी के लिए शिक्षा सामान्य तौर पर उपलब्ध नहीं थी। अध्यापक के लिए भी किसी प्रकार के औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी, और न ही अध्यापक बनने वाले व्यक्ति के लिए किसी औपचारिक प्रमाण-पत्र की आवश्यकता थी। वैदिक काल के अंतिम चरण में अध्यापन पैतृक कार्य बनने लगा और ब्राह्मणों ने इस व्यवसाय को अपनी अगली पीढ़ी को निपुण एवं प्रशिक्षित कर आगे बढ़ाया। बौद्ध काल में गैर ब्राह्मणों द्वारा भी शिक्षण कार्य किये गये, किंतु इस काल में भी शिक्षक शिक्षा औपचारिक स्वरूप प्राप्त नहीं कर सकी।

यदि हम मध्यकाल की बात करें तो यह काल शिक्षा और शिक्षक शिक्षा दोनों ही दृष्टियों से काफ़ी निराश करने वाला रहा। यह कहना गलत नहीं होगा कि शिक्षा के विकास की दृष्टि से यह काल अंधकार युग जैसा ही रहा और इस काल में मुख्यतः शिक्षा संचालन का कार्य मकतब या मदरसों के माध्यम से मुल्ला एवं मौलवी द्वारा ही किया गया। अध्यापन कार्य के संपादन के लिए मुल्ला एवं मौलवी किसी विशेष प्रशिक्षण को प्राप्त नहीं करते थे। वैदिक काल की तरह इस काल में भी नायकीय प्रणाली (मोनोटोरिल सिस्टम) के माध्यम से शिक्षण कार्य के संचालन की परंपरा थी। कक्षा नायकीय प्रणाली के अंतर्गत अध्यापक अपने प्रतिभाशाली एवं योग्य छात्रों की मदद से न केवल वर्ग का संचालन करते थे, बल्कि शिक्षण अधिगम से जुड़े तथ्यों का ज्ञान भी उन्हें प्रदान करते थे। ये छात्र अध्यापक की भाँति कक्षा संचालन कर अध्यापन का अनुभव प्राप्त करते थे और इस दृष्टि से अध्यापन का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त कर अध्यापक की तरह कार्य कर सकने की योग्यता प्राप्त करते थे।

ब्रिटिश काल को अध्यापक शिक्षा का सबसे प्रभावशाली काल कहा जा सकता है क्योंकि इस काल में शिक्षक शिक्षा का न केवल व्यावहारिक दृष्टि से विकास हुआ बल्कि नित्य नये प्रयोग एवं शोध के कारण अध्ययन

के एक विषय के रूप में भी इसकी अपनी एक अलग पहचान बनी। पश्चिमी शक्तियों के द्वारा आर्थिक रूप से हमारा जितना भी शोषण किया गया हो, आधुनिक शिक्षा और शिक्षक शिक्षा को भारत में विकसित करने का श्रेय उनको दिया जाना चाहिए। कलकत्ता विद्यालय समाज, मुंबई का देशी विद्यालय समाज, मद्रास शिक्षा समाज आदि जैसे संस्थानों की मदद से शिक्षक शिक्षा का विकास हुआ। वुड्स डिस्पैच के आलोक में शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोलने की योजना बनी। देशी संस्थाओं के द्वारा भी इस दिशा में काफी सराहनीय कार्य किये गये। कुमार, ललित[3] (2009) ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि शिक्षक के प्रशिक्षण की प्रणाली को दिशा देने का कार्य ब्रिटिशकालीन भारत में शुरू हुआ और इसी काल में संस्थागत शिक्षक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। अपने पत्र में कुमार ने व्यक्त किया है कि शायद मिशनरी के द्वारा ही भारत में औपचारिक रूप से शिक्षक शिक्षा की शुरुआत हुई और बंगाल के सेरामपुर में सन् 1793 ई. में नॉर्मल स्कूल ने उस क्षेत्र में शिक्षक शिक्षा की शुरुआत की। प्रकाश, वेद (2006)[4] ने आधुनिक युग में अठारहवीं सदी में शिक्षक शिक्षा के विकास एवं शुरुआत का श्रेय जर्मन को दिया है और व्यक्त किया है कि अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, रूस आदि देशों ने उन्नीसवीं सदी में शिक्षक शिक्षा को औपचारिक रूप से शुरू करने की सीख एवं प्रेरणा जर्मनों के शिक्षक निर्माण की पद्धति से प्राप्त की। भारत में शिक्षक शिक्षा की संस्था खोलने का श्रेय प्रकाश ने डैनिस मिशनरी को दिया है और स्पष्ट किया है कि बंगाल के सेरामपुर में शिक्षक शिक्षा की पहली संस्था 1793 ई. में खोली गयी और फिर ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1856 में मद्रास तथा 1880 में लाहौर में ऐसी संस्था का निर्माण किया।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षक शिक्षा के विकास के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये। विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने इसके स्वतंत्र अस्तित्व की बात कर न केवल इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया, बल्कि अपनी अनुशंसा के माध्यम से इसके विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कदम उठाने के लिए तात्कालिक सरकारों को प्रेरित भी किया। एन.सी.ई.आर.टी. एवं एन.सी.टी.ई. की स्थापना इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण कदम था, और अब देश में कई प्रकार के शिक्षक शिक्षा संस्थानों के द्वारा कई प्रकार के पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं। एन.सी.टी.ई. के आ जाने से यह उम्मीद काफ़ी प्रबल हो गयी थी कि अब शिक्षक शिक्षा का विकास प्रभावशाली ढंग से निर्धारित दिशा में हो सकेगा, किंतु शिक्षक शिक्षा के अनियोजित विकास एवं अनियंत्रित प्रसार ने हाल के वर्षों में इसकी गुणवत्ता को काफ़ी प्रभावित किया है। शिक्षकों की कमी तथा शिक्षा के अधिकार कानून के अनुपालन के नाम पर शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता से आज जो समझौता किया जा रहा है इसका मूल्य देश एवं समाज को आने वाले निकट भविष्य में अवश्य चुकाना पड़ेगा। आदर्शवादी देश भारत में शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रमों का निर्धारण भौतिकवादी पश्चिमी राष्ट्रों से मानक प्राप्त कर किया जाना सही नहीं होगा। स्वतंत्र भारत में यदि हम शिक्षक शिक्षा के विकास पर नज़र डालें तो हमारे पास अपनी उपलब्धि पर खुशी ज़ाहिर करने के अनेक अवसर और पहलू

हैं, किंतु गुणवत्ता की कसौटी पर शिक्षक शिक्षा को अभी भी वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक तरीकों से विकसित कर विद्यालय एवं समाज में हो रहे परिवर्तन के लिए तैयार करना है। एन.सी.टी.ई.[5] (1996) ने अपने दस्तावेज़ ''करिक्यूलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन'' के माध्यम से स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि शिक्षक की शिक्षा, शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न हिस्सा है जो सामाजिक प्रणाली से अपने आप संबद्ध है। शिक्षक शिक्षा का कोई भी पाठ्यक्रम जिसका निर्माण किसी समाज में हो रहे शैक्षिक एवं सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रखकर नहीं किया गया हो, फलित नहीं हो सकता है। दस्तावेज़ में आगे कहा गया है कि किसी भी समाज द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही शैक्षिक प्रणाली का निर्माण किया जाता है। शिक्षक शिक्षा का वह पाठ्यक्रम जो सांस्कृतिक विरासत का संचरण नहीं करता और जनता की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता है ऐसे शिक्षक का निर्माण नहीं कर सकता जो प्रदत्त तथा निर्धारित कार्यों का संपादन कर सके।

शिक्षक शिक्षा एवं गुणात्मक सुधार

शिक्षक शिक्षा में गुणवत्ता का होना अति आवश्यक है। गुणवत्ता का निर्धारण एक कठिन कार्य है, और गुणवत्ता को प्राप्त करना एक दीर्घकालीन योजना के सफल क्रियान्वयन से ही संभव है। शिक्षक शिक्षा में गुणवत्ता का संबंध बहुत सारे तत्वों से है, लेकिन मुख्य रूप से गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले तत्व हैं– शिक्षक, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन तथा भौतिक संसाधन।

शिक्षक – शिक्षक से अभिप्राय दोनों प्रकार के शिक्षकों से है–छात्राध्यापक तथा शिक्षक अध्यापक। शैक्षिक व्यवस्था के किसी भी महत्त्वपूर्ण तत्वों या कारकों की अनुपस्थिति में भी शिक्षक शिक्षा के स्तर को अपने बूते पर ऊँचा उठा सकता है, और इस दृष्टि से शिक्षक का चुनाव, उसका प्रशिक्षण, उसकी योग्यता और उसकी इच्छा शक्ति से शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता का सीधा संबंध है। शिक्षक के मनोबल को बढ़ाने के लिए तथा अधिक प्रतिभाशाली छात्रों को अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में नामांकन के लिए प्रेरित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक की कार्य-स्थिति में सुधार हो। लुइस, वर्नर[6] (2002) ने खेद व्यक्त करते हुए कहा है कि शिक्षा कर्मी, शिक्षक सहायक, नियोजित शिक्षक जैसे सम्प्रत्यय के क्रियान्वयन ने शिक्षकों की कार्य-स्थिति में काफ़ी गिरावट लाने का कार्य किया है, और ऐसी परिस्थिति में कोई शिक्षक से कैसे शिक्षण गुणवत्ता, ज़िम्मेवारी की भावना, शिक्षण अभिक्षमता और शिक्षण व्यवसाय के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति की उम्मीद कर सकता है।

शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता का पहला चरण है छात्र-अध्यापक (प्यूपिल-टीचर) एवं शिक्षक-प्रशिक्षक (टीचर-एजुकेटर) का चुनाव। यह दुर्भाग्य का विषय है कि राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् के आविर्भाव के सत्रह सालों के बाद भी शिक्षक शिक्षा से संबंधित छात्राध्यापक एवं शिक्षक-प्रशिक्षक के चुनाव की नीति एवं उसके अनुपालन पर कई सवाल उठाये जा रहे हैं। छात्राध्यापक का चुनाव कैसे हो? विषयवार शिक्षकों की आवश्यकता से उनके उत्पादन को कैसे जोड़ा जाए? उनके शिक्षण/प्रशिक्षण की अवधि कितनी हो? अभ्यास शिक्षण की प्रकृति

कितनी दृढ़ और वैज्ञानिक हो? राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय आवश्यकताओं के आलोक में एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का निर्माण एवं अनुपालन कैसे हो? यह दुख का विषय है कि आज के इस शिक्षा तकनीकी के युग में भी छात्राध्यापक के चुनाव की न तो हमारे पास कोई समान राष्ट्रीय नीति है, और न ही निर्धारित मानकों की हो रही अवहेलना के लिए निर्धारित दंड के अनुपालन की प्रक्रिया ही कारगर है। जब शिक्षक शिक्षा के महाविद्यालय निर्धारित मानकों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं होते हों और दिन-प्रतिदिन महाविद्यालयों का मात्रात्मक विकास हो रहा हो तो फिर छात्राध्यापक का चयन प्रभावित होगा ही होगा।

शिक्षक-प्रशिक्षक के चुनाव में भी निर्धारित मानकों का उल्लंघन किया जा रहा है। दो विषयों (शिक्षा तथा एक विद्यालयी विषय) के मानक का भी अनुपालन नहीं हो रहा है। संस्थानों में वैसे लोग भी शिक्षक-प्रशिक्षक जो निर्धारित योग्यता को पूरा नहीं करते हैं। ऐसे शिक्षक-प्रशिक्षक, जो खुद अप्रशिक्षित हैं न तो प्रशिक्षण के महत्त्व को स्वीकारते हैं, और न ही वांछित डिग्री प्राप्त कर शिक्षक शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास करना चाहते हैं। निर्धारित न्यूनतम योग्यता ही शिक्षक-प्रशिक्षक के लिए यदि आवश्यक मान लिया जाए (जो आमतौर पर हो रहा है) तो फिर गुणात्मक सुधार की अपेक्षा अपने आप में बेमानी है। शिक्षक-प्रशिक्षक की योग्यता, उसकी सकारात्मक सोच, उसके व्यक्तित्व, उसकी कार्य-शैली एवं उसकी मूल्यांकन प्रणाली की समझ का सीधा संबंध शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता से है, और उनके चुनाव में इन तथ्यों पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। कोई भी शिक्षक हो सकता है और कोई भी शिक्षक-प्रशिक्षक का कार्य कर सकता है-जैसी धारणा से शिक्षक शिक्षा में अपेक्षित सुधार संभव नहीं है। शिक्षक-प्रशिक्षक का वृत्तिक विकास (प्रोफ़ेशनल डेवलपमेंट) अति आवश्यक है और अब जब शिक्षा तकनीकी शिक्षक को भी इन-पुट मानता है उसका विकास और भी ज़रूरी हो गया है। कुमार[7] ललित (1997) ने भी इस पर बल देने की बात की है। कुमार ने अफ़सोस व्यक्त करते हुए कहा है कि यह दुःख का विषय है कि शिक्षक तथा अध्यापक शिक्षक को प्रेरित कर उन्हें ताज़ा रखने के लिए शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में काफी कम गुंजाइश है। शिक्षक के ज्ञान में वृद्धि करके शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को वैज्ञानिक एवं आधुनिक बनाने की आवश्यकता पर भी कुमार ने बल दिया है।

पाठ्यक्रम – पाठ्यक्रम वह माध्यम या साधन है जिसकी मदद से किसी भी कार्यक्रम के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। यह आम धारणा है कि भारतीय योजना के निर्माण तथा उद्देश्यों के निर्धारण की दृष्टि से तो काफी सबल हैं, किंतु उनका क्रियान्वयन वाला हिस्सा उतना प्रभावकारी नहीं है। शिक्षक शिक्षा भी इसका अपवाद नहीं है और ज़रूरत इस बात की है कि पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन पर ज़्यादा जोर देकर पाठ्यक्रम को ज़्यादा प्रभावशाली बनाया जाए। राजपूत, जे.एस[8] (2009) ने भी इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए यह कहने का प्रयास किया है कि सिर्फ़ समितियों के सहारे सुधार संभव नहीं है। वर्तमान स्थिति पर चोट करते हुए उन्होंने कहा है–

''राज्यों में स्कूल शिक्षकों के लाखों पद रिक्त हैं। लाखों पदों पर मानदेय प्राप्त शिक्षक पढ़ा रहे हैं। राज्यों के अनेक विश्वविद्यालयों में 15-20 सालों में शिक्षकों की नियमित नियुक्तियाँ नहीं हुई हैं। इसका समाधान करना कितना ही कठिन हो, आवश्यक तो है ही। शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र चिंतन की क्षमता वाले अनुभवी लोग चाहते हैं कि मानव संसाधन मंत्री अपने मंतव्य में सफल हों, शिक्षा संस्थाओं की साख लौटे तथा जिन मानव मूल्यों की बातें पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाने की अपेक्षा की जाती है उन्हें विद्यार्थी अपने अध्यापकों तथा संस्थाओं के व्यवहार में देख सकें।''

निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से क्रियान्वयन अधिक आवश्यक तत्व ज़रूर है किंतु पाठ्यक्रम का निर्धारण, उसमें उत्तरोत्तर सुधार एवं उसके मूल्यांकन की गुणवत्ता शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के लिए कम आवश्यक तत्व नहीं है। पाठ्यक्रम का निर्धारण, पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन, पाठ्यक्रम का मूल्यांकन तथा पाठ्यक्रम में आवश्यक संशोधन एवं सुधार के द्वारा ही शिक्षा तथा शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर शिक्षा व्यवस्था को सशक्त, वैज्ञानिक एवं उपयोगी बनाया जा सकता है।

स्थानीय आवश्यकता के आलोक में राष्ट्रीय स्तर के एकसमान पाठ्यक्रम का निर्माण, पाठ्यक्रम की अवधि का निर्धारण एवं अनुपालन तथा बदली हुई वैश्विक परिस्थितियों के आलोक में नये क्रियाकलाप, विषय एवं कार्य-योजनाओं के समावेश के माध्यम से शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम को आज अधिक उपयोगी बनाने की आवश्यकता है। योग शिक्षा, कंप्यूटर शिक्षा आदि जैसे उपयोगी विषयों को शिक्षण विषय के रूप में पाठ्यक्रम में डालने की आवश्यकता है। राव, प्रभाकर[9] एम. (2003) ने भी शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम में दार्शनिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं के अतिरिक्त कंप्यूटर शिक्षा, मूल्य शिक्षा, मानवाधिकार शिक्षा, स्त्री शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा आदि जैसे विषयों को शामिल करने की बात कही है। यद्यपि इनमें से कई बी.एड. कार्यक्रम में वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल किये जा चुके हैं, किंतु शिक्षण विषय की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता पर अभी ध्यान देना शेष है। विद्यालय स्तर पर दो विद्यालयी विषयों के साथ स्नातक होने की आवश्यकता की पूर्ति के क्रम में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विषय शिक्षक की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया जाता, फलतः मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र जैसे विषयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की काफ़ी कमी रह जाती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर उक्त विषयों एवं अन्य नये विषयों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए एन.सी.टी.ई. द्वारा फिर से एक कार्य-योजना बनाने की ज़रूरत है ताकि विषयों के क्षेत्र एवं प्रकार को विस्तारित एवं निर्धारित कर नयी आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। कोठारी कमीशन की अनुशंसा समय से ही माध्यमिक स्तरीय शिक्षक शिक्षा को दो-वर्षीय करने की योजना है, और अब आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र का हर शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय दो-वर्षीय पाठ्यक्रम को लागू करे। सिंह, एल.सी.[10] एवं मिश्रा, एस. (2007) ने भी बी.एड. पाठ्यक्रम को दो-वर्षीय कर इसकी गुणवत्ता को

बढ़ाने पर बल दिया है। इस संदर्भ में सिंह एवं मिश्रा ने यह व्यक्त किया है कि शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता का शिक्षक निर्माण के लिए दिये जा रहे समय से सीधा संबंध है। एक-वर्षीय बी. एड. पाठ्यक्रम में अभ्यास शिक्षण के लिए काफ़ी कम समय मिलता है और पाठ्यक्रम के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्षों में एकीकरण संभव नहीं हो पाता। मारिया, एनसेल[11](2002) ने भी बी.एड. पाठ्यक्रम की काल-अवधि को बढ़ाने पर ज़ोर दिया है, और व्यक्त किया है कि शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता से इसका सीधा संबंध है। प्रयोग के तौर पर चार-वर्षीय पाठ्यक्रम को लागू रखा जाए और तुलनात्मक अध्ययन के आलोक में राष्ट्रीय स्तर पर एकसमान पाठ्यक्रम को लागू किया जाए। ज़रूरत इस बात की भी है कि पाठ्यक्रमों को ढंग से लागू किया जाए, इसकी प्रभावकता का मूल्यांकन किया जाए और इसका मूल्यांकन कर संशोधन तथा परिमार्जन किया जाए। धीरे-धीरे योजनाबद्ध तरीके से दो-वर्षीय पाठ्यक्रम को न केवल पूरी तरह आवासीय पाठ्यक्रम बनाया जाए, बल्कि निजी भागीदारी के सहारे शिक्षक शिक्षा को न छोड़कर सरकार पूरी सजगता से समाज और राष्ट्र के हित में शिक्षक शिक्षा को अपने कंधों पर धारण करे। शिक्षक राष्ट्र निर्माता हैं तथा शिक्षकों के स्तर से ऊपर कोई भी राष्ट्र नहीं उठ सकता है, के सिद्धांत को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्धारण, क्रियान्वयन, मूल्यांकन एवं संशोधन कर गुणात्मक शिक्षक शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करना आज हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता बन चुकी है। मूल्य आधारित शिक्षा से ही समाज भ्रष्टाचार एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों से लड़ सकता है और इस दृष्टि से प्रभावशाली गुणात्मक शिक्षक शिक्षा के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अहमद, इम्तियाज़[12] (2011) ने भी भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए कानून से ज़्यादा नैतिक निर्माण की ज़रूरत पर बल दिया है। अहमद व्यक्त करते हैं–

> *'' भ्रष्टाचार और नागरिकों की शिकायतों की तरफ प्रशासन की उदासीनता सामाजिक और नैतिक समस्यायें हैं। हमारे समाज का ढाँचा भ्रष्टाचार और दूसरों की तरफ़ उदासीनता पर आधारित है। जब हम मन्नत माँगते समय भगवान या खुदा से कहते हैं कि हमारा फलां काम सफ़ल कर दीजिए हम आपको प्रसाद या चादर या मुकुट चढ़ायेंगे। यह प्रवृत्ति भी तो एक तरह से भगवान को घूस देने की तरह है। वास्तविकता यही है कि धार्मिकता के मापदंड स्वयं भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करते हैं। सच तो यह है कि नागरिक की तरफ़ प्रशासन का रवैया मजबूर करता है कि काम करवाने के लिए हम घूस दें। ऐसी परिस्थिति में पुनः नैतिक निर्माण के बिना देश की संबंधित समस्याओं का समाधान मुश्किल है।''*

मूल्य-आधारित शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम को लागू कर नैतिक बल वाले शिक्षकों की फ़ौज खड़ी करना और फिर भ्रष्टाचार एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों पर गंभीरता से प्रहार करना देश एवं समाज हित में ज़रूरी है। कानून नहीं, मन बदलने से सुधार होगा और यह कार्य इस कार्य हेतु निर्मित शिक्षकों से ही संभव होगा।

मूल्यांकन – शिक्षक शिक्षा में मूल्यांकन की प्रक्रिया पर चोट करते हुए कुमार, ललित[13] (1995) ने यह व्यक्त किया था कि यह एक

ऐसा पाठ्यक्रम है जिसमें छात्र फ़ेल नहीं होते। क्या यह इतना आसान पाठ्यक्रम है? यदि नहीं तो इसके मूल्यांकन की पद्धति में सुधार की ज़रूरत है। कुमार का यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है, क्योंकि मूल्यांकन में कृपांक की हिस्सेदारी बहुत अधिक है। सतत, आंतरिक एवं मानदंडों पर निर्धारित मूल्यांकन के माध्यम से पाठ्यक्रम की प्रभावकता को बढ़ाकर किसी भी पाठ्यक्रम की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है और शिक्षक शिक्षा भी इसका अपवाद नहीं है। मूल्यांकन में वैज्ञानिक आंतरिक मूल्यांकन के साथ-साथ कक्षा-कक्ष में भी सार्थक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। शिक्षण एवं मूल्यांकन साथ-साथ चलते हैं अत: कक्षा-कक्ष के मूल्यांकन को न केवल प्रभावकारी बनाने की ज़रूरत है, बल्कि कुल मूल्यांकन पद्धति में इसकी हिस्सेदारी के निर्धारण की भी आवश्यकता है। व्यवहार के सापेक्ष में उद्देश्य का निर्धारण एवं उद्देश्य के सापेक्ष में मूल्यांकन-यह आज की शिक्षा-तकनीकी की एक महत्त्वपूर्ण देन है, और इसे शिक्षक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सजगता से लागू करने की ज़रूरत है। ज़रूरत यह भी है कि छात्र, पाठ्यक्रम, कार्य-विधि एवं कार्य-योजना के साथ-साथ शिक्षक का भी मूल्यांकन हो, और उद्देश्य के सापेक्ष में मूल्यांकन का अर्थ भी यही है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्[14] (2000) ने अपने दस्तावेज़ ''विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा'' के माध्यम से मूल्यांकन के बारे में कहा है, '' अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की मॉनीटरिंग और मूल्यांकन के लिए अध्यापक शिक्षा के पाँचों तत्वों को अर्थात् सेवा-पूर्व, सेवाकालीन, आजीवन और सतत शिक्षा, विस्तार सेवा कार्यक्रम और व्यावसायिक विकास के लिए संस्था द्वारा प्रदत्त अवसर आदि सभी को समग्र और अखंडित क्रियाकलाप के रूप में देखना होगा।'' मॉनीटरिंग और मूल्यांकन की प्रचलित गतिविधि के अतिरिक्त एक गतिविधि अब संस्थाओं की प्रामाणिकता की जाँच और श्रेणीकरण के लिए की जा सकती है। ऐसी गतिविधि बाहर से लादी हुई न मानी जानकर सुधारात्मक और उपचारात्मक उपायों की आवश्यकता के लिए महत्त्वपूर्ण पूर्वाभ्यास मानी जा सकती है। अभ्यास शिक्षण शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम का बहुत ही महत्त्वपूर्ण हिस्सा है और मूल्यांकन की प्रणाली में इसका स्थान भी महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इसकी प्रकृति को और अधिक वैज्ञानिक, दृढ़ एवं प्रभावकारी बनाने की ज़रूरत है। अभ्यास शिक्षण के स्तर में सुधार के बिना शिक्षक एवं शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में आवश्यक सुधार संभव नहीं है। देवस्थली[15] आर.बी. (1990) ने शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के मूल्यांकन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए कुछ सुझाव दिये। उन सुझावों में पुरानी एवं नयी मूल्यांकन दोनों तकनीकों का उपयोग, मूल्यांकन को शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाकर इसका पूर्व निर्धारण, अभ्यास शिक्षण को मूल्यांकन पद्धति में उचित हिस्सेदारी देकर छात्राध्यापक के कौशल, अभिवृत्ति, रुचि, कार्यकुशलता का मूल्यांकन करना तथा मापक यंत्र एवं मूल्यांकन पद्धति को वैध, विश्वसनीय, व्यापक एवं वस्तुनिष्ठ बनाना, आदि महत्त्वपूर्ण है।

भौतिक संसाधन – यद्यपि अन्य आवश्यक तत्वों की तुलना में शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता के लिए भौतिक संसाधन को कम आवश्यक माना जाता है, किंतु इस सच्चाई को कोई अस्वीकार नहीं कर

सकता कि ब्लैक बोर्ड, डस्टर, चॉक, कंप्यूटर, उचित स्थान, समर्थ प्रयोगशाला, प्रभावशाली पुस्तकालय एवं अन्य सहायक सामग्रियों के अभाव में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया प्रभावित होगी ही होगी। यह दुख का विषय है कि हमारे देश के शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों में संसाधन का काफ़ी अभाव है। एन.सी.टी.ई. द्वारा निर्धारित संसाधन के मानकों पर अधिकांश महाविद्यालय खरे नहीं उतरते। बहुत सारे महाविद्यालयों में नामांकन एवं परीक्षा के बीच या तो कोई कार्यक्रम नहीं होता या कार्यक्रम के नाम पर खानापूर्ति की जाती है, और इसके लिए संसाधन की कमी सबसे अधिक ज़िम्मेवार है। राजपूत, जे.एस.[16] (2008) ने भी इस संदर्भ में कहा है,

> *''भारत के अधिकांश अध्यापक अनेक कठिनाईयों तथा कमियों में कार्य करते हैं। उनकी सेवाकालीन परिस्थितियों में कुछ सुधार हुए हैं, परंतु अनेक नयी प्रकार की कठिनाइयाँ भी बढ़ी हैं। यदि किसी राज्य में अध्यापकों के एक-चौथाई या एक-तिहाई पद रिक्त हों तो शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होगी ही, मगर उसका उत्तरदायित्व अध्यापकों पर तो कतई नहीं डाला जा सकेगा। अनेक राज्य सरकारों ने अप्रशिक्षित तथा नाम मात्र के मानदेय पर अध्यापन कार्य कराना प्रारंभ कर दिया है। शिक्षा को इतने हल्के ढंग से नहीं लिया जाना चाहिए। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों की तो पिछले कुछ वर्षों में बाढ़-सी आ गई है। अध्यापकों की तैयारी, गुणवत्ता, श्रेष्ठता में कोई देश कमी नहीं आने देना चाहेगा। भारत के अध्यापकों को आगे आकर यह भी देखना होगा कि उन्हें पूरा प्रशिक्षण मिले तथा अपना कार्य करने के लिए वे सभी साधन तथा सुविधायें भी मिलें जिनसे वह अपना कर्तव्य निर्वाह करने का सुख प्राप्त कर सकें।''*

यदि संसाधन की बात करें तो मुख्य रूप से संसाधन को तीन वर्गों में बाँटा गया है– मानव संसाधन, समय संसाधन एवं भौतिक संसाधन। यह दुख का विषय है कि हमारे शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों में इन तीनों प्रकार के संसाधनों की कमी है और ये हमारे शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम की गुणवत्ता को बुरी तरह से प्रभावित कर रहे हैं। शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा अन्य सहयोगी मानव संसाधनों के संख्या-बल एवं उनकी गुणवत्ता में कमी, पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित अवधि का कम होना और कम दिनों तक कार्यक्रम का संचालन होना तथा भौतिक संसाधनों जैसे– कक्षा-कक्ष टेबल, कुर्सी, अलमारी आदि, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, ज़रूरी उपकरण, छात्रावास, अन्य सहायक सामग्रियों की कमी हमारे अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के गुणात्मक सुधार की राह में बड़ी बाधायें हैं। इन बाधाओं को दूर करके ही शिक्षक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। गुप्ता, एम. सेन[17] (2007) ने वर्तमान माध्यमिक स्तरीय शिक्षक शिक्षा की स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा है कि शिक्षक शिक्षा के सभी कार्यक्रमों में माध्यमिक स्तरीय शिक्षक शिक्षा की स्थिति देश में सबसे अधिक नाजुक है। पाठ्यक्रम को कुछ महीनों में ही पूरा किये जाने तथा मानव एवं अन्य संसाधनों के बिना हर गली में महाविद्यालयों की स्थापना ही उनकी चिंता का मुख्य बिंदु है। उक्त समस्या का समाधान कर शिक्षक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के

सुझाव के साथ-साथ शिक्षक शिक्षा के स्वास्थ्य एवं उसकी गुणवत्ता के लिए उनका दूसरा सुझाव भी महत्त्वपूर्ण है कि राज्यों एवं केंद्र के स्तर पर अलग शिक्षक शिक्षा विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए।

शिक्षक शिक्षा में गुणात्मक सुधार के ऊपर वर्णित चार तत्वों में सुधार आवश्यक है। शिक्षक, पाठ्यक्रम मूल्यांकन एवं संसाधन किसी भी शिक्षा प्रणाली के प्राण हैं और इनका उस प्रणाली की गुणवत्ता से सीधा संबंध है। बिस्वाल, आशुतोष[18] (2007) ने गुणवत्ता के बारे में लिखा है कि गुणवत्ता प्रणाली के अनुसार भिन्न ढंग से परिभाषित की जाती है। उन्होंने प्रोडक्ट सेक्टर एवं सर्विस सेक्टर की गुणवत्ता में अंतर की बात की है और कहा है कि शिक्षा में गुणवत्ता का निर्धारण कठिन है क्योंकि यह न तो पूरी तरह प्रोडक्ट ओरियेन्टेड है और न ही पूरी तरह सर्विस ओरियेन्टेड। सामान्य तौर पर उन्होंने शिक्षा की गुणवत्ता का उत्तम प्रवृत्ति के विकास एवं कार्यक्रम की निरंतरता तथा स्वच्छता से लगाया है और व्यक्त किया है कि गुणवत्ता का संबंध सभी प्रकार के संसाधनों के विकास एवं शिक्षा ग्रहण करने वाले व्यक्ति के संतोष तथा उनकी आवश्यकता से है। उन्होंने एन.सी.टी.ई. के प्रपत्र *''करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर क्वालिटी टीचर एजुकेशन (1998)''* की आलोचना करते हुए कहा है कि वहाँ गुणवत्ता को ठीक से परिभाषित नहीं किया गया है जो कि किया जाना चाहिए था। गुणवत्ता अपने आप में किसी भी कार्यक्रम के लिए ज़रूरी है और उक्त वर्णित मानकों में अपेक्षित संशोधन एवं सुधार कर शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है और यह आज की राष्ट्रीय एवं सामाजिक आवश्यकता है।

संदर्भ

1. यादव, सतीश कुमार. 2009. ''अध्यापक शिक्षा-समस्याएँ एवं चुनौतियाँ'' *भारतीय आधुनिक शिक्षा.* 30(2) 79-85. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
2. एन.सी.ई.आर.टी. 2008. *''अध्यापक-भूमिका, तैयारी और समर्थन''*, बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 27-32, पटना, बिहार.
3. कुमार, ललित. 2009. ''स्टेटस ऑफ सेकेंड्री टीचर एजुकेशन इन बिहार''. *टीचर एजुकेशन.* 43(2), 39-49.
4. प्रकाश, वेद. 2006. ''रिवैमपिंग टीचर एजुकेशन : रेट्रोस्पेक्ट एंड प्रोसपेक्ट''. *अनवेषिका.* 3(2), 1-5.
5. एन.सी.ई.आर.टी. 1996. *''दी कनटेक्स्ट''.* करिक्यूलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन. 1-18.
6. वर्नल लूइस. 2002. ''टीचर एजुकेशन एंड सोशल ट्रांसफौर्मेशन''. *एडुट्रैक्स.* 2(2), 30-35.
7. कुमार, ललित. 1997. ''रिऑरगनाइजिंग सेकेंड्री टीचर एजुकेशन फॉर क्वालिटी कंट्रोल''. *टीचर एजुकेशन.* 31(1 - 2), 62-68.
8. राजपूत, जे.एस. 2009. ''समितियों के सहारे सुधार''. *दैनिक जागरण.* 13.08.2009.
9. राव, प्रभाकर एम. 2003. ''स्ट्रेंथनिंग टीचर एजुकेशन प्रोग्राम्स''. *एडुट्रैक्स.* 3(2), 30-31.
10. सिंह, एल. सी. एवं एस. मिश्रा. 2007. ''ए प्ली फॉर टू इयर रेगुलर बी.एड. प्रोग्राम'', *यूनिवर्सिटी न्यूज़,* 45(15), 4-7.

11. मारिया एनसेल. 2002. ''रिवैमपिंग टीचर एजुकेशन करीक्यूलम''. *एडुट्रैक्स.* 2 (3), 27-28.
12. अहमद, इम्तियाज़. 2011. ''कानून से ज़्यादा नैतिक निर्माण की ज़रूरत''. *दैनिक जागरण.* 6.11.2011.
13. कुमार, ललित. 1995. ''रिवाइटलाइजिंग सांइस टीचर एजुकेशन फॉर क्वालिटी इम्प्रूवमेंट''. प्रस्तुत पत्र, आई.ए.टी.ई., राष्ट्रीय संगोष्ठी, भुवनेश्वर.
14. एन.सी.ई.आर.टी. 2000. *''अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की मॉनीटरिंग और मूल्यांकन''.* विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 111.
15. — 1990. देवस्थली, आर.बी. *''इवैल्यूएशन इन टीचर एजुकेशन''.* टीचर एजुकेशन इन इंडिया-ए रिसोर्स बुक, 100-116.
16. राजपूत, जे.एस. 2008. ''शिक्षा-शिक्षक और समाज''. *दैनिक जागरण,* 15.09.2008.
17. गुप्ता, एम. सेन. 2007. ''ए केस फॉर यूनिवर्सिटी ऑफ टीचर एजुकेशन''. *यूनिवर्सिटी न्यूज़.* 45(36), 6-7.
18. बिस्वाल, आशुतोष. 2007. ''क्वालिटी प्रौसेस नॉर्मस फॉर फ्रंटलाइन टीचर एजुकेशन - नीड ऑफ दि चेंजिंग वर्ल्ड''. *यूनिवर्सिटी न्यूज़.* 45(07), 1-8.